

ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क पर चराई का असर

जनता की जांच

1997

परिचय

प्रस्तावित ग्रेट हिमालयन नेशनल पार्क (जी.एच.एन.पी.) हिमाचल के कुल्लू जिले के पूर्वी भाग में स्थित है। कुल्लू शहर से यह लगभग 60 किलोमीटर की दूरी पर है। पार्क का कुल क्षेत्रफल 765 वर्ग किलोमीटर है, जो कि सरबती, जीवा, सैंज, और तीरथन घाटियों में फैली है। कहा जाता है कि हिमाचल का यह सबसे अधिक सुरक्षित वन क्षेत्र है जिसमें तरह तरह के मैदान (या थाच), घास, जड़ी बूटियां, पेड़ पौधे, और पशु पक्षी जीवित हैं। बगल में पिन घाटी राष्ट्रीय उद्यान और रूपी-भाबा अभयारण्य स्थित हैं। इन सबको एक साथ लिया जाये तो हिमाचल प्रदेश का सबसे बड़ा सुरक्षित क्षेत्र माना जायेगा।

जी.एच.एन.पी. की कल्पना तीन सर्वेक्षणों से जन्मी है। सबसे पहला सर्वेक्षण 1978.80 में हुआ जिसे हिमाचल वन्यप्राणी परियोजना - 1 (या एच.डब्ल्यू.पी. १) के नाम से जाना जाता है। हिमाचल वन विभाग के कर्मचारियों के सहयोग से किये गये इस सर्वेक्षण के सह-निदेशक थे विदेश से आये हुए विशेषज्ञ ए.जे.गैस्टन, पी.जे.गार्सन, और डा. एम.एल.हंटर। पूरे प्रदेश में किये गये विस्तृत अध्ययन के द्वारा यह पाया गया कि सैंज और तीरथन घाटियों के ऊपरी भागों में सबसे अधिक वन्यप्राणी जीवित थे। इसी लिये एच.डब्ल्यू.पी. १ की सिफारिश थी कि इस पूरे क्षेत्र को राष्ट्रीय उद्यान घोषित करके पूरी सुरक्षा दी जाये।

दूसरे चरण में पी.जे.गार्सन ने 1983 में हिमाचल वन विभाग को उद्यान की सीमायें निर्धारित करने तथा उसकी व्यवस्था को बनाने में एच.डब्ल्यू.पी.२ के तहत सहायता की। प्रस्तावित सीमा में सैंज और तीरथन घाटियों के अलावा जीवा घाटी को भी शामिल कर लिया गया। उसके बाद सरकार ने मार्च 1ए 1984 को 620 वर्ग किलोमीटर का सुरक्षित क्षेत्र अधिसूचित ;दवजपलिद्ध कर दिया। साथ ही इस सुरक्षित क्षेत्र के उत्तरी, पश्चिमी, और दक्षिणी सीमा से सटे 5 से 15 किलोमीटर पट्टी को 'बफर' ज़ोन (याने कि 'कवच' रूपी क्षेत्र) अधिसूचित ;दवजपलिद्ध किया। पूर्वी सीमा पर बफर ज़ोन की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वहां ऊंचे दुर्गम पहाड़ थे। इसी के साथ 1987 में हिमाचल के मुख्य वन्यप्राणी संरक्षक तंकमदद ने पार्क की व्यवस्था योजना तैयार की।

सितम्बर-अक्टूबर 1991 में गैस्टन और गार्सन ने दुबारा क्षेत्र का दौरा किया और पार्क के सभी पशु पक्षियों का सर्वेक्षण किया। उनकी यह भी कोशिश रही कि चराई और जड़ी बूटी बटोरने का भी अनुमान लगा सकें क्योंकि उन्हें संदेह था कि इन क्रियाओं से पार्क को हानि पहुंच रही थी। इस अध्ययन का नाम एच.डब्ल्यू.पी. ३ था और इसके माध्यम से कई अन्य शोध कार्यक्रमों के सुझाव दिये गये।

1991 और 1994 के बीच केंद्र सरकार के पर्यावरण तथा वन मंत्रालय द्वारा संचालित "राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों में मानव-प्रकृति अंतर सम्बंधों" अध्ययन में भी जी.एच.एन.पी. को सम्मिलित किया गया था। शोध दलों ने लगभग 6 महीने पार्क में गुज़ारे और उनका उद्देश्य था निम्नलिखित तथ्यों का अनुमान लगाना:

- i. उद्यान/अभयारण्य पर आस-पास की बस्तियों का असर।
- ii. आस-पास की बस्तियों पर उद्यान/अभयारण्य का असर।
- iii. ;दमहंजपअमद्ध असरों को किन तरीकों से कम किया जा सकता है।

इसके पहले कि मंत्रालय का यह अध्ययन पूरा हो सकता था, मंत्रालय ने तय किया कि पार्क के चारों तरफ ;मबवकमअमसवचउमदजद्ध ईकोडेवेलपमेंट (याने कि पर्यावरण-संगत विकास) परियोजना लागू की जाये और 1994 से यह परियोजना आरम्भ हो गई।

जन-अध्ययन की परिकल्पना

1984 से ही बफर जोन के अधिसूचित होने की खबर बफर जोन और आस पास के क्षेत्रा में फैलने लगी थी। 1994 में जब ईकोडेवेलपमेंट परियोजना का शुभारम्भ हुआ और पार्क के अधिकारी नजदीकी गांवों का दौरा करने लगे तो जनता के बीच में सुगबुगाहट और तीव्र हो गई। कुछ गांव के नवयुवकों ने अपने हक-हुकूम की रक्षा के लिये "किसान मजदूर हक संगठन" की नींव डाली। और 1996 में संगठन की एक छोटी सी बैठक सैज के उपरेला गांव में आयोजित की गई जहां मुख्य सवाल था, "जी.एच.एन.पी. क्यों बना?"

इस बैठक में जब उपरोक्त परिचय का वर्णन हुआ तो कई अनुत्तरित सवालों की श्रंखला लम्बी होती गई। 1980 में सैज और तीर्थन घाटियों के वन और वन्य प्राणी कैसे जीवित थे? उनको सुरक्षित रखने के लिये क्या गतिविधियां पिछले युगों से अपनाई गई थीं? उन गतिविधियों या परम्पराओं को बिना समझे कैसे इस क्षेत्रा को राष्ट्रीय उद्यान या पार्क घोषित कर दिया गया? लोगों को पार्क के बाहर कर देने से ही अगर वन्यप्राणी जीवित रहते हैं तो इतने वर्षों तक, जब क्षेत्रा को ही पार्क घोषित किया गया और न ही वन विभाग द्वारा सुरक्षित वन बनाये गये थे, यह सम्पदा जीवित कैसे रही?

पार्क की व्यवस्था से भी कई प्रश्न उभरे। गैस्टन और गारसन ने कैसे तय किया कि सैज और तीर्थन घाटियों में चराई और जड़ी बूटी बटोरने की वजह से वन और थाच नष्ट हो रहे हैं? क्या वे हिमाचल की वन सम्पदा से पहले ही परिचित थे या क्या वो केरल मुनाल जैसी पक्षियों के विशेषज्ञ थे? पार्क बनने से लोगों के पुराने हक हुकूमों का क्या होगा? 1864 की एण्डरसन रिपोर्ट क्या बर्तनदारी समाप्त करने के लिये पर्याप्त आधार है? जब पार्क के अंदर जनता के प्रवेश पर मनाही हो जायेगी तो पार्क के अंदर चारा और जड़ी बूटी की सम्पदा का क्या होगा? क्या उन्हें व्यवसायिक ईकाइयों को मुनाफा कमाने के लिये सौंप दिया जायेगा?

इन तमाम सवालों पर बहस करते हुए मजदूर किसान हक संगठन के साथी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पार्क के निर्माण की नींव में गैस्टन और गारसन की 1991 की रिपोर्ट है और इस रिपोर्ट में कई अप्रमाणित तथ्य हैं। चूंकि गैस्टन और गारसन दोनों विदेशों से आये हुए विशेषज्ञ थे, इसलिये उनको स्थानीय पशु पक्षी के बारे में विशेष जानकारी नहीं थी, और, जो भी जानकारी उन्हें प्राप्त हुई वह स्थानीय वन विभाग के कर्मचारियों और ग्रामीण जनता से पूछ कर ही मिली होगी। इसलिये स्थानीय ज्ञान का उपयोग करके उनकी रिपोर्ट की काट ढूंढने की सख्त जरूरत है।

अतएव यह तय हुआ कि गैस्टन और गारसन ने जिस मार्ग से सैज और तीर्थन घाटियों का दौरा किया था, लगभग उसी मार्ग से उन घाटियों में जा कर फिर से जानकारी एकत्र करने की आवश्यकता है। इस प्रकार के अध्ययन को किसान मजदूर हक संगठन के साथी ही करेंगे और चारागाह और जड़ी बूटियों पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

अध्ययन के तौर तरीके

इस जन अध्ययन का मुख्य उद्देश्य पार्क क्षेत्रा पर चराई के असर को आंकने का था। जी.एच.एन.पी पर जितने शोध कार्य हुए हैं उनमें वन्य प्राणियों पर ध्यान केंद्रित रहा है और वास्तविक चरवाहों से किसी ने बात करने की कोशिश नहीं की है। इस क्षेत्रा के बारे में इन चरवाहों के पास कई पुस्तों की एकत्रित जानकारी है और इस ज्ञान के भंडार को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इसलिये इस जन-अध्ययन का केंद्रीय बिंदु थाचों में चरवाहों से बातचीत करना था। साथ ही कुछ चारा और जड़ीबूटी मापने के तौर तरीकों को भी अपनाया गया।

अध्ययन दल ने दो बार पार्क का दौरा किया। पहली बार जुलाई 1997 में दल सैज घाटी में रक्ती, राला, कम्बा, और ढेला इत्यादि थाचों से होते हुए तीर्थन घाटी के मरानी थाच द्वारा लौटी। दूसरी यात्रा अगस्त 1997 में सैज घाटी के शैनशर से आरम्भ हुई और फिर जीवा घाटी से होते हुए फांगची में पारबती घाटी में प्रवेश करके लौटी। रास्ते में जीवा नाल की दोनो उप-घाटियों, खण्डाधार और बहुलीभाटी, का भी अध्ययन हुआ।

दल के सदस्य अधिकतर स्थानीय युवक थे जो घाटियों से भली भांति परिचित थे। उनमें से एक स्वयं चरवाहा था और तीन ने सर्वेक्षण की तकनीक में प्रशिक्षण प्राप्त की थी। दल के साथ दो भारवाहक मजदूर भी गये थे जिनका काम पहली छावनी तक रसद पहुंचाना था क्योंकि पार्क के दुर्गम इलाकों में खाने पीने की कोई व्यवस्था नहीं थी। इस जन-अध्ययन की सबसे बड़ी उपलब्धी शायद इस बात में मानी जायेगी कि रसद पहुंचाने के बाद ये दोनों साथी लौटने के बजाय अध्ययन कार्यों में जुट गये क्योंकि उन्हें लगा ऐसे कार्य तो वे खुद भी कर सकते थे।

अध्ययन ने निम्न कार्य किये:

1. सैंज और जीवा घाटी के सभी चरवाहों के साथ बातचीत (केवल दो झुण्ड छूट गये)।
2. हर झुण्ड की गिनती ताकि पता चले कि कितने जानवर चराई के लिये पार्क के भीतर जाते हैं।
3. पार्क के अंदर चरवाहों के आने जाने का रास्ता तथा हर पड़ाव पर कितने दिन रुके।
4. अत्यधिक चराई, नमक पदमिजंजपवदद्धए वन्य प्राणियों का शिकार, और पर्यावरण के विनाश आदि विषयों पर चरवाहों की प्रतिक्रिया।
5. पौधों की गणना, थाचों में चारा प्रजातियों की गिनती, और उनके गुणों का विवरण।
6. जड़ी बूटियों की उपस्थिति का विवरण।

कुल मिल कर दल ने छः थाचों का विस्तृत अध्ययन किया और उनका नक्शा बनाया। हर थाच में प्रजातियों की सूची बनाई गई और, चरवाहों की सलाह लेकर, उन्हें खाने लायक चारा और अन्य प्रजातियों में विभाजित किया गया। साथ ही कई 10 मी. व्यास के गोल घेरों को बनाकर उनमें अलग प्रजातियों की गिनती की गई। केवल रक्तिखोल में यह अध्ययन वर्षा की वजह से पूरा नहीं हो पाया। जहां जहां चरवाहों के पड़ाव थे वहां उनके साथ बैठ कर लम्बी बातचीत भी हुई। हर चरवाहे से दूसरे झुण्डों के बारे में भी जानकारी ली गई।

तथ्य

सैंज और जीवा घाटियों में उपस्थित झुण्डों की जानकारी तालिका 1 में दी गई है। इन झुण्डों में आपसी तालमेल भी रहता है क्योंकि चरवाहों (जो अधिकांश गूजर हैं) और उनके गांवों में कई रिश्ते हैं। इसके फलस्वरूप, यह पता चला कि शक्ति और मरौड़ के झुण्डों को उस झुण्ड के साथ मिला दिया जाता है जो सैंज घाटी की राला के तरफ जाता है। इसी प्रकार लगभग सभी झुण्ड कई गांवों के जानवरों को मिला कर बनाये जाते हैं। हालांकि इस प्रकार का मिलन पारम्परिक रूप से चला आ रहा है, फिर भी कोई भी चरवाहा दूसरे की बर्तनदारी में हिस्सा बांट कर सकता है अगर वहां का चारा अधिक है।

जीवा घाटी में दो चरवाहों के साथ भेंट हुई जो मन्डी ज़िले से आये थे। उन्होंने बताया कि वे पार्क में एक महीने की चराई के लिये चोरी छिपे घुस जाते हैं क्योंकि पार्क में परिपूर्ण चारा है। स्टोगिन में दो अन्य झुण्डों के बारे में शैंशर के चरवाहों ने बताया (विशेष कर के तुंग गांव के लक्ष्मण नें) जो अपने झुण्ड तक जाते वक्त उन झुण्डों से मिले थे।

भेड़ बकरी के अलावा अन्य जानवर भी चराई के लिये पार्क में आते हैं। सैंज घाटी के थुम खैन के करीब 50 बैल और खच्चर थे जब कि तीरथन के मरैन में लगभग 500 बैल और खच्चर थे। ये जानवर आस-पास के गांवों से हैं और उन्हें पार्क में चराई के लिये तीन महीने के लिये छोड़ दिया जाता है। बीच-बीच में कोई आकर उनके लिये नमक छोड़ जाता है। लापा के पास ऊखला थाच में 50 भैंस भी पाये गये जो सैंज और शानगढ़ होते हुए आये थे, परंतु उनके चरवाहों के साथ भेंट नहीं हो पाई।

सभी चरवाहों की एकमत राय थी कि पार्क क्षेत्रा के अंदर चराई पिछले 20 वर्षों में लगातार घटती जा रही है। इसका पार्क की घोषण से कोई सम्बंध नहीं है। अधिकांश चरवाहों का कहना था कि गांव के नज़दीक जाड़े में चारे के अभाव से, जानवरों की संख्या धीरे धीरे घट रही है। इसलिये पार्क में आने वाले झुण्डों की संख्या भी घट रही है। चूंकि एक झुण्ड कई घरों के जानवरों को इकट्ठा करके बनता है, झुण्डों में जानवरों की संख्या बरकरार है क्योंकि तभी एक चरवाहे का गुज़ारा निकल पायेगा।

जानवरों की संख्या कम होती जा रही है, इसका सबूत इस बात से मिलता है कि बहुतेरे ऐसे ऊंचे थाच

(या नैना) हैं जिनमें पिछले पांच वर्षों से कोई चराई नहीं हुई है। गांव कुगांश के मान सिंह, जो पिछले 40 वर्षों से चराई के लिये इस क्षेत्रा में आ रहे हैं, अपने झुण्ड को नैना ले जाते थे क्योंकि राला में उनकी बर्तनदारी सीमित थी। परंतु

उनका कहना है कि राला और रक्ति के बर्तनदार आज कल केवल रक्ति में ही चराई करते हैं क्योंकि उनके जानवर कम हो गये हैं। इसलिये उन्होंने राला दूसरों के लिये छोड़ दिया है और अब मान सिंह को नैना जाने की ज़रूरत नहीं है।

इसी प्रकार बहुत कम ऐसे झुण्ड रह गये हैं जो सैंज नाल के दक्षिण में मरौड़ के आगे कम्बा की तरफ जा रहे हैं। ये झुण्ड शानगढ़ कोठी से आते थे और अब ये तीरथन के झुण्डों के साथ मिल कर डेला और पाटन के चारागाहों में ही चराई कर लेते हैं। अध्ययन दल को इस कथनी का साक्ष्य अपने दौरे में इस बात से मिला कि मुख्य मार्गों को छोड़ कर छोटे नालों पर पुल नहीं बने हैं। लकड़ी के ये पुल चरवाहे ही बनाते हैं और यदि वे नहीं बने हैं तो इसका मतलब होता है कि नाल के उस पार के थाचों तक कोई झुण्ड जा नहीं पाया होगा।

निष्कर्ष

अध्ययन से एकत्रित तथ्यों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जीवा घाटी में 5ए700 भेड़ बकरी चरते हैं, सैंज में 7ए000 और तीरथन में 6ए300। याने कि कुल मिलाकर पूरे पाक क्षेत्र में 19ए000 जानवर चराई के लिये प्रवेश करते हैं।

तीरथन में केवल तीन झुण्डों से भेंट हुई। इसलिये तीरथन घाटी में उपस्थित जानवरों की संख्या का अनुमान लगाने के लिये तीरथन और सैंज के चरवाहों, और लांगचा, नरवरी, और गुशैनी के लोगों से बातचीत करके उनसे जानकारी ली गई। इन सभी की जानकारी वास्तविक है क्योंकि तीरथन के झुण्डों को इन्हीं के क्षेत्रों और मार्गों से गुज़रना पड़ता है।

घास की प्रजातियां

सैंज और तीरथन घाटियों के 6 थाचों में अध्ययन करने पर पता चला कि 4 थानों में 70६80 प्रजातियां थीं और राला में 105. धर्मलार में वर्षा के कारण गिनती नहीं हो पाई। 27 से 40 प्रजातियों के नाम स्थानीय चरवाहों की मदद से सूचीबद्ध किया गया। कुल आंकड़े तालिका 2 में प्रस्तुत किये गये हैं।

अध्ययन के समय यह पाया गया कि झुण्डों के रात के पड़ाव के पास के क्षेत्र में खरपतवार की मात्रा अधिक थी। जिन मुख्य मार्गों से झुण्ड एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव तक जाते थे उनके बगल में भी खरपतवार की घनी पैदावार थी। परंतु पड़ाव और मार्ग हर साल वहीं रहते हैं इसलिये खरपतवार का फेलाव सीमित है। 6 थाचों में 66 घेरों की गिनती से पाया गया कि केवल 5 घेरों में ही मलोटा उपस्थित था। जवारा हर पड़ाव के पास उग रहा था परंतु चरवाहों के अनुसार इसका इस्तेमाल चारे के लिये होता है इसलिये यह अधिक फेल नहीं पाता है।

मानसिंह का कहना था कि नियमित चराई से अलग प्रजातियां नियंत्रण में रहती हैं और किसी एक को फेलने का मौका नहीं मिलता है। नैना में उदाहरण देते हुये उन्होंने बताया कि जड़ी-बूटी और चारा की प्रजातियां कम हुई हैं तो त्रुजी (एक प्रकार का जंगली गुलाब) जैसी झाड़ियां बढ़ गई हैं क्योंकि नैना में चराई कमशः कम होती जा रही है। उनके अनुसार चराई से झाड़ियों की छंटनी होती रही है और जो प्रजातियां चरने लायक नहीं हैं उन्हें भेड़-बकरी अपने खुरों से रौंद देते हैं। यही बात अन्य चरवाहों ने भी दोहराई और मानसिंह की बात में विशेष वज़न है क्योंकि वे पिछले चालीस वर्षों से झुण्ड चरा रहे हैं और उनका अनुभव प्रगाढ़ है।

वन्यप्राणियों को क्षति

अधिकांश चरवाहों की राय थी कि उनके झुण्डों के चरने से वन्य प्राणियों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता है। उनका कहना था कि जब वे थाचों की तरफ जाते हैं तो रास्ते में कहीं भी ज़मीन पर मोनाल, कोरलास, ट्रेगोपैन या अन्य पक्षियों के घोंसले और जंगली जानवर घने जंगलों में ही पाये जाते हैं और चरवाहे अपने मार्गों से भटकते नहीं। खास तौर से ऊपर जाते समय वे जल्दी में होते हैं ताकि थाचों तक मौसम अनुकूल रहते हुये पहुंचा जा सके। वापसी में वे ज़रूर रुकते हुये और विचरते हुये आते हैं परंतु तब तक वन्यजीवों के बच्चे बड़े होकर अपना घोंसला या मांद कब का छोड़ चुके होते हैं।

कुछ चरवाहों ने अवश्य स्वीकारा कि हो सकता है कि कुछ घोंसलों में भेड़-बकरी के खुर लग जाते हों, परंतु सभी एकमत थे कि पार्क क्षेत्रा में अंदर जाने की यात्रा मई-जून में होती है, जब तक वन्य प्राणी के बच्चे इतने बड़े हो जाते हैं कि वे घोंसला छोड़ सकते हैं। कुछ का यह भी कहना था कि थाचों में छोटे पक्षी दिखते हैं परंतु वे सभी भेड़-बकरी के रास्ते में नहीं आते हैं।

जीवा घाटी में चरवाहों ने बताया कि ऊपर जाते समय मासनु नामक झाड़ी जल स्रोतों के पास मिलती है जिसका रस उस समय भेड़-बकरी के लिये नुकसानदेह होता है। इसलिये चरवाहों को सावधान रहना पड़ता है कि जानवर इसको न खाये और जल्दी से थाचों तक पहुंचे। परंतु वापसी तक यह झाड़ी बढ़ कर चारे के लिये उपयुक्त हो जाती है, इसलिये नीचे उतरते समय जानवर इसको चरते हैं और चराई के लिये समय भी देना पड़ता है। यह जानकारी दल की दूसरी यात्रा में प्राप्त हुई इसलिये इसकी पुष्टि सैज और तीरथन घाटियों के चरवाहों के साथ नहीं हो पाई।

बीमारियों का फैलाव

अधिकांश चरवाहों ने माना कि घरेलू जानवरों से वन्यजीवों तक बीमारी फैलने की संभावना है। कुछ ने यह भी कहा कि यह संभावना कम है क्योंकि वन्यप्राणी और घरेलू जानवर एक ही चारागाह में नहीं चरते हैं। दल ने पाया कि रक्ति के झुण्ड को चरवाहों ने अपने से खनाग के सरकारी पशु चिकित्सालय में टीका लगवाया था। इसके अलावा चरवाहों ने बताया कि पार्क अधिकारी भी मुफ्त टीका लगवाते हैं। याने कि चरवाहे रोग की संभावना को पहचानने के साथ-साथ उसके रोकथाम के लिये कदम भी उठाते हैं।

वन्यजीवों का शिकार

शिकार का विषय संवेदनशील मुद्दा था। सभी चरवाहों का कहना था कि वे कभी खाने के लिये शिकार नहीं करते हैं क्योंकि वैसे भी क्षतिग्रस्त भेड़-बकरियों से पर्याप्त मांस प्राप्त हो जाता है। कुछ ने यह भी बताया कि चंद पेशेवर शिकारियों के कारण सभी चरवाहे बदनमा हो जाते हैं। मानसिंह ने कहा कि भालू जैसा जानवर एक समय में 10.15 पशुओं को मार सकता है। इसलिये चरवाहे उसके लिये फंदा लगाते हैं, परंतु साधारणतः इसकी भी आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि रखवाली करने वाले कुत्ते पहले ही भौंकने लगते थे और जंगली जानवर भाग जाते थे।

चरवाहों की शिकायत थी कि अगर जंगली जानवर भेड़ बकरी को मार देता था तो मुआवजा पाने के लिये सरकारी दफ्तरों के कई चक्कर काटने पड़ते थे। जहां एक पशु की बाजार में कीमत 900 से 1500 रुपये होती है वहां सरकारी दर 300 रुपये है और विभाग से केवल 150 रुपये मिलते हैं जिसके लिये काफी पापड़ बेलने पड़ते हैं। अर्थात् जंगली जानवरों से अधिक खतरा भेड़-बकरियों को है।

चारागाह की रक्षा

कुछ चरवाहों ने बताया कि थाचों में हर दूसरे साल में चराई की परंपरा है ताकि घास को बढ़ने का मौका मिले। उदाहरणार्थ पाशी गांव के झुण्ड को 15.20दिन की चराई चार थाचों में मिलती है जिसे वे 6 थाचों के बीच बांट लेते हैं (खनेरसु, शिलिलुगाड़ी, रठीथाटी, भेखलखाड़ा, वैच और कसाल- सब जीवा घाटी में)। इसी तरह शैंशर का एक झुण्ड, जो तुंग, बजाहड़ा, तलाहड़ा, जांगला गांवों से एकत्रित होता है, की मुख्य चराई दशयाडी और धर्मेलार में होती है। शैंशर से दूसरा झुण्ड (मनहरा, बागीशादी, बनावगी ग्रामों से) खंडाधार और पानीहरा के बीच चराई को बांट लेता है। पलाइच और पेरवरी के झुण्ड, जिनसे ढेला में मुलाकात हुई, हर वर्ष वापसी में एक नया मार्ग लेते हैं। सभी चरवाहे चारागाह के रख-रखाव के बारे में सचेत हैं।

हक हकूक

सभी चरवाहों के अनुसार सैज और जीवा घाटियों में चराने का उनका "हक" था। कुछ का कहना था कि यह हक कागज़ाती था और पटवारी के पास दर्ज था। इसमें कुछ विवाद रहा कि यह हक परिवार का थ्ज़ा या गांव का।

अधिकतर यह मान्यता थी कि हक परिवार का ही था, जो बाकि गांव के पशुओं को अपने झुण्ड में शामिल कर लेते थे। परंतु इस बात पर कोई मतभेद नहीं था कि कौन अपने जानवर कहां चरायेगा। चारागाहों को बंटवारा पारंपरिक तरीके से सर्वसम्मति से हो चुका था।

कुछ थाचों का हक नीचे के गांव देवता के पास था। जैसे कि ग्रहन के जयचंद ने बताया कि वे चराई के लिये नजराना शरण की देवी आशापुरी को देते हैं, क्योंकि लाहुलिभाती के थाच पर देवी का स्वामित्व है। इसी प्रकार शैंशर के 18 थाचों के मालिक जगथम्ब देखता है और चरवाहा उन्हीं से अनुमति लेकर और शुल्क देकर थाचों में जाते हैं।

निष्कर्ष

बहुत कम समय और बहुत कम साधनों के साथ अध्ययन दल ने सीमित जानकारियां एकत्रा की हैं। दल का मानना था कि पार्क क्षेत्रा के बारे में विदेशी विशेषज्ञों से कहीं अधिक वहां के स्थानीय चरवाहों को मालूम होगा जो परंपरागत रूप से वर्षों से पार्क में भेड़-बकरियों को चराने के लिये ले जाते रहे हैं। विदेशी विशेषज्ञों का लुके छिपे शायद यही मानना था, भले ही वे अपने आप को कितना ही 'विशेषज्ञ' क्यों न मान लें। 1983 में ही गार्सन ने लिखा था, "तथ्यों को तर्कसंगत रूप से एकत्रा करने का एकमात्रा रास्ता है चरवाहों के साथ भेंटवार्ता।"

तमाम सीमाओं के बावजूद इस अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि चरवाहों के अनुभव और ज्ञान के अनुसार, गैस्टन औश्र गारसन की जी.एच.एन.पी. के बारे में जितनी भी कल्पनायें और आकांक्षायें थीं, जिनकी वज़ह से उन्होंने पार्क की घोषणा की पेशकश की, वे सभी निरर्थक हैं। भेड़-बकरी की संख्या की बात हो या घास की प्रजातियों की, वन्य प्राणियों को क्षति का भय हो या बीमारियों के फैलाव की, शिकार का मुद्दा हो या सुरक्षा का— इस जन अध्ययन से कहीं भी विशेषज्ञों और सरकार के तर्कों की पुष्टि नहीं होती है। अतएव यह कहना कि ग्रामीणों की वज़ह से पर्यावरण का नाश हो रहा है — यह एक विवादास्पद कथन है। इसलिये पार्क के निर्माण तथा व्यवस्था पर एक बड़ा प्रश्न चिह्न खड़ा हो जाता है।